हिन्दी आलोचना : उद्‌भव और विकास

डॉ. आर.पी. वर्मा,
असि. प्रो. एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग,
इन्दिरा गॉंधी राजकीय महिलामहाविधालय,
रायबरेली, उ.प्र

हिन्दी गद्य की अन्य विधाओं के समान वर्तमान हिन्दी समालोचना भी एक प्रकार से पाश्चात्य–साहित्य की ही देन है। संस्कृत आलोचना–पद्धति का विवेचन करते हुए हम पीछे कह आये है कि उसका आधार विस्तृत अथवा सार्वदेशिक और सार्वकालिक साहित्य नहीं था। परन्तु आज उसका अर्थात् हिन्दी–आलोचना का पहले का सीमित दृष्टिकोण अत्यन्त विस्तृत और व्यापक बन गया है। अब हम साहित्य के विशिष्ट गुणों या अंगो की सीमित आलोचना से हटकर, विश्व–साहित्य को आधार मान, उसकी आलोचना करने लगे है। आज हम सम्पूर्ण विश्व की राजनीति, आर्थिक, सामाजिक तथा नैतिक गतिविधियों के प्रकाश में अपने साहित्य का मूल्यांकन करते है। अब साहित्य का उद्‌देश्य केवल मनोरंजन ही नहीं माना जाता। इसी कारण अब रस, अंलकार, ध्वनि आदि का विवेचन–रूढि का पालन मात्र माना जाता है। अब तो हम यह देखते हैं कि इस संघर्षशील युग में हमारे साहित्यकार युग की भावनाओं का प्रकाशन निष्पक्ष रूप से अंकित करने में सफल हुए हैं या नही। आज की आलोचना का मेरूदण्ड इसी को माना जा सकता है। अपने इस विस्तृत रूप तक आने में हिन्दी आलोचना में मुक्त हृदय से पाश्चात्य–आलोचना के सहयोग को स्वीकार किया है। इसी कारण आज हिन्दी की आलोचना के नवीन रूप को पाश्चात्य–आलोचना का प्रतिरूप–सा माना जाता है।

हिन्दी–साहित्य में आलोचना पहले–पहल केवल काव्यगत गुण–दोषों तक ही सीमित रही है। भक्तिकाल में उसका रूप टीकाओं के रूप से मिलता है। 'मानस' और 'बिहारी सतसई' की विभिन्न टीकाएं और उनके विभिन्न अर्थो की व्याख्या की परम्परा काफी समय तक चलती रही। भक्तिकालीन कृष्ण–भक्त कवियों ने तत्कालीन कृष्ण–साहित्य की पद्यानुबद्ध विवरणात्मक आलोचनाएं लिखी। इसके लिए नाभादास का 'भक्तमाल' उल्लेखनीय है। उदाहरण के लिए, उनका सूर–विषयक पद दृष्टव्य है :–

''सूर कवित सुनि कौन कवि, जो नहिं सिर चालन करें।

उक्ति ओज अनुप्रास वरन, अस्थिति अति भारी।।

वचन प्रीति निर्बाह अर्थ, अद्‌भुत तुक धारी।

प्रतिबिम्बत दिव्य दृष्टि, हृदय हरि लीला भासी।।

जन्म करम गुन रूप सबै, रसना परकासी।

विमल बुद्धि गन और की, जो यह गुन श्रवननि करै।।

सूर कविता सुनि कौन कवि, जो नहि सिर चालन करै।

इसके अतिरिक्त 'सूर–सूर तुलसी ससी' तथा 'तुलसी गंग दुबौ भए सुकविन के सरदार' जैसे

प्रशंसा अथवा अप्रशंसा–सूचक सूत्रों का प्रचार था। ये आलोचनाएं आलोच्य–कवि या कवियों का जनमत पर आधारित मूल्यांकन तो कर देती थीं, परन्तु आधुनिक साहित्यिक दृष्टि से त्रुटिपूर्ण थीं। यदि प्रसिद्धि और प्रचार को ही श्रेष्ठता का प्रतिमान मान लिया जाय तो आज गुलशन नन्दा को हिन्दी का सवेश्रेष्ठ उपन्यासकार मान लेना पड़ेगा, क्योकि उनके उपन्यास सामान्य पाठकों द्वारा सबसे अधिक खरीदे और पढ़े जाते है।

रीतिकाल में लक्षण–ग्रंथो के रूप में रस, अंलकार, छन्द, नायक–नायिका के विभिन्न भेदोंपभेदों का वर्गीकरण करने में ही समालोचना का रूप समाप्त हो गया था। उस समय निर्माण की सुघरता, विभाव और अनुभावों आदि की यथाक्रम योजना, विभिन्न संचारी–व्यभिचारी भावों के नियमबद्ध निरूपण आदि ही काव्य के मुख्य लक्षण रह गये। काव्य–समीक्षा भी इन्हीं रचनात्मक बारीकियों और पद्धति–रक्षा के प्रत्यनों तक सीमित रही। रीति–काल में प्रधान रूप से दो प्रकार की समीक्षा–पद्धति के दर्शन हुए :–

(1) अंलकारवादी और (2) रसवादी। केशव और उनके अनुयायी अंलकारों के विवेचन में दत्तचित रहें। चिन्तामणि, मतिराम, देव, बिहारी आदि ने रस को प्रमुखता दी। इन दोनों वर्गो में समीक्षा के स्थान पर अपने युग की काव्य–रचनाओं का आलकन करने तथा उनक दोषों का उद्‌घाटन करने की प्रवृत्ति की मुख्य थी। परन्तु इस प्रकार की समालोचना साहित्य का अनुशासन करता तो दूर रहा, उसका मार्ग–निर्देशन भी न कर सकी। इसका कारण था–आलोचना विवेचनात्मक होती है और विवेचना पद्य के माध्यम से अच्छी तरह नहीं किया जा सकता। मध्य–युग में हिन्दी–गद्य लिखने का प्रचलन अधिक नहीं था, इसी कारण उस युग में आलोचना का विकास नहीं हो सका। सभी लक्षण–ग्रन्थ पद्य में ही लिखे जाते रहे। इस युग में लक्षण–ग्रंथों में रस, अंलकार, शब्द–शक्ति, नायक–नायिका भेद तक ही आलोचना का रूप सीमित रहा। हिन्दी के कवि–आचार्यो में मौलिक समीक्षा के स्थान पर संस्कृत के काव्यशास्त्रीय आचार्यो की मान्यताओं का अनुवा करना और अपने गुण की काव्य–रचनाओं का आंकलन करने की प्रवृत्ति ही प्रधान रही। इसलिए इसमें मौलिक विवेचन के आधार पर नये काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों का प्रणयन नही हो सका।

19वीं सदी में गद्य की अन्य विधाओं के जन्म और विकास के साथ–साथ समालोचना अपना नया स्वरूप धारण कर आगे बढ़ी। भारतेन्दु–युग में आकर हिन्दी साहित्य के नवीन और बहुमुखी विकास ने आलोचना के स्वरूप और प्रकार में नये तत्वों का समावेश किया। साहित्यिक विवेचन का स्तर अधिक बौद्धिक हो गया। गद्य में उपन्यास, कहानी, नाटक, निबन्ध आदि का आरम्भ हो चुका था। उनके विवेचन के लिए नये प्रतिमानों की आवश्यकता थी। इस साहित्यिक नवीनता के कारण इस काल की समीक्षा में रीतिकालीन पद्धति का प्रभाव तो रहा, परन्तु किसी विशेष शास्त्रीय नियम का पालन नहीं हो सका। भिन्न–भिन्न समीक्षक अपनी रूचि और प्रवृत्ति के अनुसार रचनाओं के गुण–दोषों का उद्‌घाटन करने लगे। अनुवाद की परीक्षा के लिए भाषा–सम्बन्धी प्रयोगो के अतिरिक्त भावों की सम्यक् अवतारणा का प्रश्न भी समीक्षकों के सम्मुख था। इस नवीन समालोचना के विकास में तत्कालीन पत्रिकाएं–'कवि–वचन–सुधा', 'हरिश्चन्द्र मैगजीन', 'ब्राह्मण', 'हिन्दी–प्रदीप'–आदि का प्रमुख भाग रहा। इनमें प्रायः कुछ टिप्पणियॉ समालोचना के नाम से प्रकाशित होती थीं।

भारतेन्दु ने स्वयं 'मुद्राराक्षस' की भूमिका तथा 'नाटक' नामक निबन्ध लिखकर नयी समालोचना का पथ–प्रदर्शन किया। यह सैद्धान्तिक–आलोचना का पहला रूप था। इसमें भारतेन्दु ने नये–पुराने नाट्य–सिद्धान्तों का

विवेचन करते हुए नये नाटकों की रचना के लिए, नये युग की आवश्यकताओं के अनुरूप, नये नाट्य–सिद्धान्तों की स्थापना की थी। यह हिन्दी की नवीन प्रयोग–कालीन समीक्षा का स्वरूप था। डा0 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के शब्दों में–'हम इन्हें आने वाली समालोचना का आरम्भिक रूप मान लें तो सम्भवतः कुछ अनुचित नही होगा।' इस समीक्षा के प्रवर्त्तकों में भारतेन्दु, प्रेमघन, लालकृष्ण भट्ट, श्रीनिवासदास, बालमुकुन्द गुप्त, प्रतापनारायण मिश्र, गंगाप्रसाद अग्निहोत्री आदि प्रमुख थे। भारतेन्दु–युग के उत्तरार्द्ध में हिन्दी–समीक्षा ने तनिक गंभीर और सैद्धान्तिक रूप धारण कर लिया था। इस पर अंग्रेजी समालोचना का प्रभाव पड़ने लगा था, जिससे समीक्षा के नये प्रतिमान स्थापित करने के प्रत्यत्न होने लगे थे।

गंभीर लेखों के रूप में प्रस्तुकों की विस्तृत आलोचना 'प्रेमघन' ने अपनी 'आनन्द कादम्बिनी; नामक पत्रिका से आरमी की। उन्होने श्रीनिवासदास के 'संयोगिता स्वयंवर' नाटक की बड़ी विशद् और कड़ी आलोचना लिखी। इसी समय पं0 बालकृष्ण भट्ट ने भी उक्त पुस्तक की आलोचना 'हिन्दी प्रदीप' में निकाली। इन दोनों आलोचनाओं में केवल दोष–दर्शन की प्रवृत्ति ही अपनाई गई थी। आलोचना का पुस्तक–रूप में आरम्भ महावीर प्रसाद द्विवेदी की 'हिन्दी कालिदास की आलोचना' से हुआ। इसमें संस्कृत के विद्वानों द्वारा कालिदास के काव्य–सम्बन्धी भाषा और व्याकरण के दोषों को ही हिन्दी में उपस्थित किया गया। इसी प्रकार उन्होने 'नैषध चरित–चर्चा', 'विक्रमांकदेव चरित–चर्चा' नाम पुस्तकों में भी इसी प्रणाली को अपनाया। आचार्य शुक्ल के शब्दों में–''इन पुस्तकों को एक मुहल्ले में फैली बातों का दूसरे मुहल्ले वालों को कुछ परिचित कराने के प्रत्यन्त के रूप में समझना चाहिए। स्वतन्त्र समालोचना के रूप में नही।'

द्विवेदी जी के अनेक समकालीन लेखकों में से मिश्रबन्धु, पद्मसिंह शर्मा, कृष्णबिहारी मिश्र, लाला भगवानदीन आदि ने रीतिकालीन–साहित्य का विस्तृत समीक्षा में पूर्ण योग दिया। द्विवेदी और इन आलोचकों के उपर्युक्त दूसरे वर्ग में बड़ा अन्तर था। द्विवेदी जी रीति–परम्परा के घोर विरोधी और कट्टर नैतिकता के पक्षपाती थे परन्तु यह दूसरा वर्ग रीतिकालीन साहित्य की ओर कट्टर नैतिकता के पक्षपाती थे। परन्तु यह दूसरा वर्ग रीतिकालीन साहित्य को ही वास्तविक साहित्य मान, उसी की विवेचना में लगा रहा। इस वर्ग ने भाक्ति–साहित्य की ओर ऑख उठाकर भी न देखा। तुलसीदास का महत्व हमने डाक्टर ग्रियर्सन से सीखा और जायसी का आचार्य शुक्ल से। यह दूसरा वर्ग बिहारी, केशव, पद्माकर और देव–आदि को ही उत्कृष्ट साहित्य–स्रष्टाओं के रूप में स्वीकार कर उनकी पूजा करता रहा। उस समय हमारे साहित्य में ऐसे आलोचकों की कमी नहीं थी, जिन्होंने बिहारी की प्रतिद्वन्द्विता में देव को तो ला खड़ा किया–पर कबीर, मीरा, सूर, तुलसी, रसखान, घनानन्द और जायसी के लिए मौन धारण किये रहे।

द्विवेदी जी ने उपर्युक्त ग्रन्थों की अपनी आलोचना द्वारा निर्णयात्मक और परिचयात्मक समालोचना का सूत्र.पात किया। 'कालिदास की निरंकुशता' में निर्णयात्मक समालोचना के तथा अन्य दो पुस्तकों में परिचयात्मक आलोचना के दर्शन हुए। इनमें उन्होंने भाषा तथा व्याकरण के व्यक्तिक्रम ही अधिक दिखाये। साथ ही सामाजिक आदर्शो के प्रधानता दी और प्राचीन कवियों की तुलना में भारतेन्दु और मैथिलीशरण गुप्त के काव्योत्थान की सराहना की। मिश्रबन्धु द्विवेदी–युग के दूसरे बड़े आलोचक थे। उन्होंने अपने 'हिन्दी–नवरत्न' नामक ग्रन्थ में हिन्दी के नौ सर्वश्रेष्ठ कवियों की भाषा, भाव और शैली की दृष्टि से तुलनात्मक समालोचना प्रस्तुत कर उनका स्थान निर्धारित किया। इसमें उन्होंने बिहारी से देव को श्रेष्ठ प्रमाणित किया। इसके

कारण बिहारी बड़े कि देव नामक विवाद उठ खड़ा हुआ, जिसे लेकर पं0 पद्मसिंह शर्मा ने बिहारी सतसई पर एक तुलानात्मक समालोचना लिखी, जिसमें सतसई–परम्परा का सुंदर उद्घाटन किया गया। शर्मा जी शब्दों के अद्भुत शिल्पी और अभिव्यंजना–सौन्दर्य के परम पारखी थे। इसके उत्तर में पं0 कृष्णबिहारी मिश्र ने 'देव और बिहारी' नामक पुस्तक लिखी। इस आलोचना में तर्क और व्यक्तित्व की छाप मिलती है। यद्यपि इसमें उन्होने देव का पक्ष लिया, तथापि बिहारी के महत्व को भी पूर्णतया स्वीकार कर अपनी निष्पक्षता का भी परिचय दिया। इसके उत्तर में लाल भगवानदीन की 'बिहारी और देव' नामक पुस्तक निकली, जिसमें उन्होंने मिश्रबन्धुओं के भद्दे आक्षेपों का उत्तर देते हुए कृष्णबिहारी मिश्र की बातों पर भी सहृदयतापूर्वक विचार किया।

द्विवेदी–कालीन आलोचना के विकास में दो पत्रिकाओं का विशेष हाथ–'सरस्वती' और 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका'। इसमें पुस्तक समीक्षा या पुस्तक परिचय के साथ–साथ गवेषणात्मक और सैद्धान्तिक आलोचना सम्बन्धी गंभीर लेखों का प्रकाशन हुआ। डॉ0 श्यामसुंदर, राधाकृष्णदास, रत्नाकर, अम्बिकादत्त व्यास, गंगाप्रसाद अग्निहोत्री आदि के सुंदर आलोचनात्मक निबंध निकले। गुण–दोष विवेचना–प्रणाली से भिन्न अग्निहोत्री की 'समालोचना, हिन्दी में समालोचना प्रथा, समालोचना का ग्रंथ सम्बन्धी ज्ञान, सहृदयता, सत्यता आदि पर प्रकाश डालते हुए बीच–बीच में अंग्रेजी समालोचना–पद्धति का भी परिचय दिया। इस दृष्टि से इस ग्रंथ का एक ऐतिहासिक मूल्य माना जा सकता है।

इसी काल में बाबू श्यामसुंदरदास ने विश्वविद्यालयों की उच्च कक्षाओं के लिए साहित्य–सिद्धान्त सम्बन्धी ग्रंथ 'साहित्यालोचन' लिखा। साथ ही आपने तुलसीदास और भारतेन्दु पर गणेषणात्मक आलोचनाएं भी लिखीं, जिनमें प्राच्य और पाश्चात्य समालोचना–सिद्धान्तों का सुंदर समन्वय किया गया। पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने अपने 'विश्व साहित्य का परिचय कराया। समष्टि रूप से यह आधुनिक हिन्दी–समीक्षा की आरम्भिक और नवचेतनावस्था थी, जिसमें आलोचना के नये मानदण्ड स्थापित करने की महती आकांक्षा व्यक्त हो रही थी। यह आलोचना द्विवेदी जी और रीतिकालीन–आलोचनात्मक पद्धति को बहुत पड़ने लगे थे। इसी समय हिन्दी आलोचना क्षेत्र में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का उदय हुआ। उस हिन्दी–समीक्षा की वह आरम्भिक नवचेतना की प्रयोगकालीन अवस्था थी। शुक्ल जी के आते ही इस क्षेत्र की कायापलट हो गई।

शुक्लजी की समीक्षा के स्पष्टतः दो क्षेत्र रहे – **1.** साहित्य की धाराओं का, और **2.** प्रसिद्ध रचनाओं का। प्रथम में प्रधानतः उनका हिन्दी साहित्य का इतिहास आता है और द्वितीय में प्रधानतः तुलसी, सूर और जायसी की समीक्षाएं। इस समीक्षाओं द्वारा शुक्ल जी रस और अंलकार उस समय बहिष्कृत होने से बच गये। उन्होने इस कार्य के लिए सूर, तुलसी और जायसी जैसे श्रेष्ठ कवियों को चुना और उनके श्रेष्ठ काव्य–सौन्दर्य के साथ रस और अंलकार का विन्यास करके रस पद्धति को अपूर्व गौरव प्रदान किया। साथ ही उन्होंने काव्य की स्थापना ऐसी उच्च मानसिक भूमि पर की, कि लोग यह भूल गये कि रस और अंलकारों का दुरूपयोग भी हो सकता है। उनका भारतीय और पाश्चात्य साहित्य का अध्ययन गंभीर और विस्तृत था, इसी कारण वे दोनों का समन्वय करने में समर्थ हो सके। साथ ही उन्होने हिन्दी–साहित्य में सर्वप्रथम कवियों की विशेषताओं और उनकी अन्यःवृत्तियों के उद्घाटन का सफल प्रयास किया। सूर, तुलसी और जायसी की आलोचनाएं–इसका प्रमाण है। ये पांडित्यपूर्ण, विश्लेषणात्मक गंभीर आलोचनाएं मार्मिक, स्पष्ट और विस्तृत तथा गहन अध्ययन से परिपूर्ण है। अपने 'इतिहास' में उन्होने इतिहास के साथ–साथ प्रसिद्ध कवियों की अंतरंग और बहिरंग विशेषताओं

पर प्रकाश डाला। ये आलोचनाएं विवेचनात्मक और व्याख्यात्मक होने के साथ ही वैयक्तित्व रूचि पर आधारित न होकर, सर्वमान्य साहित्यिक सिद्धान्तों पर आधारित थी। इस क्षेत्र में शुक्लजी ने जो कार्य किया, वह अत्यन्त ठोस, गंभीर और आधारित थीं। इस क्षेत्र में शुक्लजी ने जो कार्य किया, वह अत्यन्त ठोस, गंभीर और सराहनीय है। आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी के शब्दों में–''हिन्दी समीक्षा को शास्त्रीय और वैज्ञानिक भूमि पर प्रतिष्ठित करने में शुक्ल जी ने युग–प्रवर्तक का कार्य किया, वह हिन्दी के इतिहास में सैदव स्मरणीय रहेगा। कुछ आलोचकों ने शुक्लजी को न समझकर उनकी कुट आलोचना भी की है। परन्तु इन आलोचनाओं को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है जैसे एक निर्बल व्यक्ति किसी अत्यधिक सबल व्यक्ति पर आक्रमण करने का साहस तो करता है परन्तु उसकी विराट् शक्ति का आभास पा, उससे भयभीत हो उसके सम्मुख नत–मस्तक हो जाता है। शुक्लजी के उपरान्त हिन्दी ऐसे प्रखर व्यक्तित्व के दर्शन फिर नहीं हुए। शुक्लजी को इसी कारण हिंदी का सर्वश्रेष्ठ आलोचक माना गया है। डॉ0 नगेन्द्र के शब्दों में – ''आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के विषय में यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि उनके समान मेधावी आलोचक किसी भी आधुनिक भारतीय भाषा में नहीं है। हमें अन्य भारतीय भाषाओं के विषय में तो नही मालूम, परन्तु हम निस्संकोच यह कहने को प्रस्तुत है कि हिन्दी–साहित्य में गोस्वामी तुलसीदास के बाद आचार्य रामचंद्र शुक्ल जैसे उद्भट चिन्तक और मौलिक विचारक आज तक कोई दूसरा पैदा नहीं हुआ।

'साहित्यालोचन' की प्रणाली पर बाद में अनेक विद्वानों ने विभिन्न ग्रंथ लिखे। इनमें नलिनीमोहन सान्यालय का समालोचना तत्व, लक्ष्मीनाराण सुंधाशु का काव्य में अभियंजनावाद, बाबू गुलाबराय का सिद्धान्त और अध्ययन, तथा 'काव्य के रूप' रामदहिन मिश्र का 'समीक्षालोक' आदि प्रसिद्ध है। इनसके अतिरिक्त अनेक प्राचीन भारतीय तथा यूरोपीय काव्यशास्त्रीय ग्रंथो के अनुवाद भी हुए हैं। साथ ही विभिन्न कवियों पर भी अनेक समीक्षात्मक ग्रंथ लिखे गये है। इनमें गुप्तजी का 'काव्यधारा', 'महाकवि हरिऔध', 'प्रसाव की नाट्यकला', 'सुमित्रानन्दन पंत' आदि उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त 'केशव की काव्य–कला', 'कविवर रत्नाकर', 'सुकवि समीक्षा' आदि ग्रंथों में प्राचीन तथा नवीन कवियों पर अच्छे समीक्षात्मक निबन्ध लिखे गये हैं। इन सब पर शुक्लजी का प्रभाव है। शुक्ल–धारा के अनुयायियों में पं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र, चन्द्रवली पाण्डेय, नन्ददुलारे बाजपेयी, शिलीमुख, कृष्णशंकर शुक्ल, डॉ0 रामविलास शर्मा, डॉ0 जगन्नाथप्रसाद शर्मा और बाबू गुलाबराय आदि प्रमुख हैं।

शुक्लजी के पाश्चात् हिन्दी समालोचना कई दिशाओं में आगे बढ़ी है। कितने ही नये समीक्षक इस क्षेत्र मे आये है। आज हिन्दी के प्रमुख साहित्यकारों पर विचारपूर्ण निबन्ध और पुस्तकें लिखी जा रही है। प्राचीन साहित्य का अनुशीलन तथा शोध–सम्बन्धी कार्य भी हो रहा है। डॉ0 बड़थ्वाल, हजारीप्रसाद द्विवेदी, राहुलजी आदि ने इस क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य किये है। विभिन्न विश्वविद्यालयों में शोध–कार्य चल रहा है। इसमें नवीन तथा प्रचीन साहित्य और साहित्यकारों सम्बन्धी गवेषणात्मक सामग्री का उद्घाटन और आंकलन किया जा रहा है। 'इतिहास' को विभिन्न कालों में बॉट कर उसका विस्तृत अध्ययन करने का भी प्रयत्न हुआ है। एक–एक विषय पर विभिन्न लेखकों की दर्जनों पुस्तकें निकल रही हैं। इनमें अनेक महत्वपूर्ण है। इन आलोचकों में रामकुमार वर्मा, बृजेश्वर वर्मा, माताप्रसाद द्विवेदी, बड़थ्वाल, नन्ददुलारे बाजपेयी, रामविलास शर्मा आदि उल्लेखनीय हैं।

इधर कुछ समय से वादों या विशेष मतों की ओर नवीन समीक्षकों की प्रवृत्ति बढ़ रही है, जिसके कारण हिन्दी समीक्षा कई सम्प्रदायों में विभक्त हो गई है। इनमें मार्क्सवादी विचार पद्धति

सबसे सशक्त और व्यापक है। इसके प्रमुख आलोचकों में–डॉ0 रामविलास शर्मा, शिवदानसिंह चौहान, अमृतराय, प्रकाशचन्द्र गुप्त, रांगेय राघव, नामवरसिंह चन्द्रवली सिंह, रामगोपालसिंह चौहान आदि की गणना की जा सकती है। दूसरी ओर इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय, नगेन्द्र नलिनविमोचन शर्मा आदि मनोवैज्ञानिक प्रयोगवादी समीक्षा को लेकर चलते रहे है। चन्द्रवली सिंह, भगवतशरण उपाध्याय सिंह आदि आलोचक अपनी **बुद्धिवादी प्रखर समीक्षा–पद्धति** द्वारा आधुनिक साहित्य की गतिविधि का सूक्ष्म निरीक्षण और मनन करने में संलग्न है। परन्तु इन समस्त आलोचकों में अभी एक भी ऐसा नहीं दिखाई देता जो आचार्य शुक्ल के समान साहित्यिक–गतिविधि पर व्यापक प्रभाव डालने में समर्थ रहा हो। त्रैमासिक 'आलोचना' तथा मासिक 'साहित्य–संदेश' और 'समालोचक' जैसे पत्रों ने हिन्दी–आलोचना के विकास में अपनी ऐतिहासिक और महत्वपूर्ण प्रभावशाली भूमिका निभाई है। आज लेखकों और कवि समालोचक भी बनने का प्रयत्न कर रहा है, जिससे पारस्परिक कटुता और छिछली व्यक्तिगत आलोचनाओं के दर्शन हो रहे है। आज एक ऐसे प्रखर व्यक्तित्व की आवश्यकता है जो इस बिखरे हुए मण्डल को एकत्र कर साहित्य का पथ–प्रदर्शन कर सकें।

समष्टि रूप से, हिन्दी साहित्य की यह विधा साहित्य की गतिविधियों का नियमन और मूल्यांकन करने में पर्याप्त सक्षम रही है। इसमें मत–वैभिन्नय–सैद्धान्तिक, व्यावहारिक और व्यक्तिगत भी रहे है, जिनके कारण इसका विकास भी हुआ है और पर्याप्त क्षति भी पहुँचीं है। अपने विकास के विभिन्न चरणों को पार रकती हुई हिन्दी आलोचना आज उस स्थिति तक पहुँच चुकी है, जहाँ वह साहित्य की अन्य विधाओं के साथ गौरव का अनुभव कर सकती है। इसमें भौतिक चिन्तन भी है और दूसरों का अनुकरण भी, इसमें संयम भी रहा है और अराजकता भी, परन्तु कुछ मिलाकर इसका जो रूप उभरा है, वह प्रौढ़, सशक्त और प्रभावशाली है। अभी इसकी विकास यात्रा जारी है।

आज के हिन्दी–आलोचको में केवल दो ही आलोचक ऐसे है जो शुक्लजी की स्पष्ट, निर्भीक और मार्मिक आलोचना की याद दिलाते है। वे है–पं0 नन्नदुलारे बाजपेयी तथा डॉ0 राम विलास शर्मा। इन दोनों आलोचकों में पर्याप्त सैद्धान्तिक मतभेद होते हुए भी गहरी अन्तर्दृष्टि की एक ऐसी समानता है, जो उनकी आलोचनाओं को अधिक स्पष्ट, खरी और सर्वजन–सुलभ बना देती है। इन दोनों को बिना किसी भी संदेह या पक्षपात के, आचार्य शुक्ल का सच्चा उत्तराधिकारी माना जा सकता है। आज की आलोचना देश की तेजी से बदलती परिस्थितियों, उनके कारण उठने वाली विभिन्न समस्याओं और नये जीवन–मूल्यों का विवेचना करती हुई नये समीक्षा सिद्धान्तों का निर्धारण करने में व्यस्त है। नई परिस्थितियों, उनके कारण उठने वाली विभिन्न समस्याओं और नये जीवन–मूल्यों का विवेचन करती हुई नये समीक्षा सिद्धान्तों का निर्धारण करने में व्यस्त है। नई परिस्थितियों और नये जीवन–मूल्यों के संदर्भ में पुराने समीक्षा सिद्धान्तों की नई–नई व्याख्याएं प्रस्तुत की जा रही है। इस व्याख्या में सुविचारित सिद्धान्तों की भी झलक मिल रही है और उधार लिए हुए ऐसे विदेशी सिद्धान्तों का भी पिष्टपेषण किया जा रहा है, जो देश की वर्तमान परिस्थितियों में संगत नही बैंठते, भले ही अपने जन्मस्थान की परिस्थितियों के अनुरूप रहे हो। समीक्षा–क्षेत्र में बढ़ता हुआ यह विदेशी प्रभाव बढ़ता ही चला जा रहा है। यह स्थिति चिन्तनीय अवश्य है, फिर भी इतना विश्वास है कि इस विचार मंथन से शुभ, कल्याणकारी सिद्धान्तों की उत्पत्ति अवश्य होगा।

इधर हिन्दी में भाषा–शास्त्र, लोक–साहित्य तथा विभिन्न विधाओं पर गवेषणात्मक शोध–कार्य होता रहा है। इससे नई सामग्री प्रकाश में आई है और मूल्यांकन में

तटस्थता और उदारता की प्रवृत्ति का विकास हुआ है। इस कार्य ने हिन्दी–आलोचना को अधिक गहन, विस्तृत, वैज्ञानिक और संतुलित–समन्वित रूप प्रदान करने में सहायता की है।

संदर्भ सूची

- हिन्दी आलोचना की परिभाषिक शब्दावली – अमरनाथ
- आधुनिकता और हिन्दी आलोचना – इन्द्रानाथ मदान
- आलोचना के नोट्स – गणेश पाण्डेय
- आलोचना और विचारधारा – नामवर सिंह : अशीष त्रिपाठी
- हिन्दी समीक्षा और आचार्य शुक्ल – नामवर सिंह, सं0 ज्ञानेन्द्र कुमार संतोष
- हिन्दी आलोचना का दूसरा पाठ – निर्मल जैन
- हिन्दी आलोचना का विकास – मधुरेस
- हिन्दी आलोचना : दृष्टि और प्रवृत्तियॉ – मनोज पाण्डेय
- हिन्दी आलोचना में कैनन – निर्माण की प्रक्रिया मृत्युंजय
- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास – रामकुमार वर्मा
- हिन्दी साहित्य का इतिहास – रामचन्द्र शुक्ल
- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – आलोचना का अर्थ : अर्थ की आलोचना – राम स्वरूप चतुर्वेदी
- हिन्दी आलोचना के आधार स्तम्भ – रामेश्वर लाल खण्डेल वाल, सुरेशचन्द्र गुप्त
- हिन्दी साहित्य का इतिहास – लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
- हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास – लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
- हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास – विजय पाल सिंह
- हिन्दी आलोचना : विविध आयाम – राम किशोर शर्मा
- हिन्दी समीक्षा दशा और दिशाएं – सम्पादक – डॉ0 मंजुल उपाध्याय

Copyright © 2015, Dr. R.P.Verma. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.